ज़मीनी लोकतंत्र की प्रहरी इरोम शर्मिला चानू

डॉ. प्रदीप कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग,
सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

सारांश

राज्य के किसी कानून का असंवेदनशील हो जाना नागरिक आंदोलन के लिए उर्वरक भूमि तैय्यार करता है। भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों और जम्मू कश्मीर में लागू आर्म्ड फोर्स स्पेशल पावर ऐक्ट (Armed Forces Special Power Act) भी कुछ इसी श्रेणी में आता है। मणिपुर में सैनिकों द्वारा कुछ आम नागरिकों को मौत के घाट उतार देने वाली घटना से न केवल मणिपुर में आंदोलन हुआ, बल्कि दिल्ली की संघीय सरकार को भी इसने अपनी चपेट में ले लिया। और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्य सुरक्षा के नाम पर बने इस कठोर कानून बनाम मानवाधिकार सुरक्षा पर एक तीखी बहस छिड़ गई। ये बहस कोई राज्य बनाम राज्य की नहीं है, बल्कि राज्य की सत्ता बनाम नागरिक अधिकारों (मानवाधिकार आंदोलन) के बीच है जहां इरोम शर्मिला चानू अचानक एक मानवाधिकार आंदोलनकर्ता के तौर पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरती है और राज्य को संवेदनशील मानवतावादी कानून बनाने और उसे जनकल्याण की भावना से लागू करने की हिदायत देती है और शान्ति दूत की भूमिका निभाती है।

बीज-शब्द: सामाजिक साहचर्य, सेंडविच नागरिक होने का मर्म, नैतिक क्षतिपूर्ति, ज़मीनी लोकतंत्र, स्थानीय जनजातीय अस्मिताओं को मान्यता।

प्रस्तावना

राज्य का बुनियादी मकसद व्यक्ति के जीवन के अधिकार की रक्षा, शांति व्यवस्था और संपत्ति के अधिकार को सुरक्षित करना माना जाता है। इसमें जीवन का अधिकार तो सबसे महत्वपूर्ण और बुनियादी जरूरतों में से एक है। उत्तर आधुनिकतावादी समाजों में भी इन्हीं अधिकारों के इर्द-गिर्द राज्य के अधिकार क्षेत्र और मानवाधिकारों की सुरक्षा को लेकर विश्वभर में ना जाने कितनी बहसें छिड़ी हुई हैं, चूँकि आधुनिक राष्ट्र राज्य ने अपनी परिधि इतनी व्यापक कर ली है कि ये आज व्यक्ति के शयनकक्ष में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करने लगा है। हालांकि इसके अपने कुछ निहितार्थ हैं जो इसके विस्तार के लिए उचित तार्किक विवेकसम्मत थीसिस प्रस्तुत करते

हैं, लेकिन सबसे भयंकर इसके स्याह पक्ष पर नज़र रखने की भी है जहां राजनीतिक सत्ता अपने नागरिकों की बुनियादी जरूरतों ही खिलाफ़त करने लगती है और नागरिकों के जीवन, अस्मिता, सहअस्तित्व और संवेदनशीलता की बलि चढ़ा देती है।

काबिले ए ग़ौर है कि राज्य की इन कार्यवाहियों के पीछे भी उन्हीं परम्परागत बुनियादी नियमों की शह को ही दिखाया जाता है। राज्य नागरिक और राज्य सुरक्षा के नाम पर अपनी सत्ता का विस्तार लोकतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद कर लेता है जो निश्चित ही नागरिकों के जीवन और समाज के लोकतांत्रिकरण की क्रीम पर किया जाता है। ऐसा ही कुछ भारत की संघीय सरकार ने उत्तर पूर्वी

राज्यों और जम्मू कश्मीर में आफ्रस्पा (Armed Forces Special Power Act) जैसे कठोर कानून पिछले पांच दशकों से लागू करके किया है।

ज़मीनी तौर पर वैसे भी राज्य के किसी कानून का असंवेदनशील हो जाना नागरिक आंदोलन के लिए उर्वरक भूमि तैय्यार करता है। भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों खासकर मणिपुर में 1958 से लागू आफ्रस्पा (AFSPA) भी कुछ इसी श्रेणी में आता है। मणिपुर में सुरक्षा बलों द्वारा कुछ आम नागरिकों को मौत के घाट उतार देने वाली घटना से न केवल मणिपुर में आंदोलन हुआ, बल्कि केन्द्रीय सरकार को भी इसने अपनी चपेट में ले लिया। और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्य सुरक्षा के नाम पर बने इस कठोर कानून बनाम मानवाधिकार सुरक्षा के बीच एक तीखी बहस छिड़ गई। ये बहस कोई राज्य बनाम राज्य की नहीं है, बल्कि राज्य बनाम नागरिकों (मानवाधिकार आंदोलन) के बीच हैं जहां इरोम शर्मिला चानु अचानक से एक मानवाधिकार आंदोलनकर्ता के तौर पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरती है।

जीवन-संघर्ष एवं कार्य

इरोम शर्मिला का जन्म 14 मार्च, 1972 में मणिपुर के मवेशी अस्पताल में चपरासी की नौकरी करने वाले इरोम नंदा सिंह और इरोम शाखी देवी के परिवार में नौवीं सन्तान के रूप में हुआ। बड़े मुश्किल हालात में अपना गुज़र बसर करने वाले परिवार की लड़की इरोम शर्मिला स्कूली शिक्षा में कोई मेधावी छात्रा नहीं थी अपनी दसवीं कक्षा पास करने में इरोम शर्मिला को तीन वर्ष लगे, लेकिन जैसे तैसे अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद सिलाई कढ़ाई, ट्यूशन पढ़ाने लगी साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने कैरियर की शुरुआत की। मणिपुरी अखबारों जैसे 'हुये लानपाउ' में लेख लिखती रहीं यही वह शिक्षा, अनुभव, ज़मीनी हकीकत और राजनीति की समझ थी जिसे इरोम शर्मिला ने किसी स्कूल से नहीं प्रत्यक्ष अनुभव से सीखा था¹। हालाँकि इरोम शर्मिला का किसी खास राजनीतिक परिवार से संबद्ध नहीं था और किसी राजनीतिक दल के प्रति कोई समर्पण भी नहीं था जिसके तहत वह किसी राजनीतिक उद्देश की प्राप्ति के लिए कोई

संघर्ष कर रही थीं। हालांकि कहा जाता है कि मणिपुर जैसे दूर-दराज के राज्य में ऐसी घटनाएँ कोई खास मायने नहीं रखती खासकर दिल्ली और मानवाधिकार आयोग और आन्दोलनकर्ताओं के लिए जिस बात पर अक्सर मणिपुरी लोगों में रोष और निराशा का भाव साफ देखा जा सकता है, लेकिन ये विडम्बना ही है कि मणिपुर अपनी खास नारीवादी संस्कृति और विकास के अपने स्थानीय लेकिन टिकाऊ विकास के लिए जाना जाता है और वहां की अवाम अपनी संस्कृति और जीवन के तौर तरीकों से संतुष्ट रहने वाकई दिखाई पड़ती है जिसका उन्हें गर्व भी है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि दिल्ली की केंद्रीय सरकार के लिए ये राज्य वहां के नागरिकों से ज्यादा देश की एकता और अखण्डता के सवाल के इर्द गिर्द अपनी राजनीतिक सामरिक रणनीति के लिए महत्वपूर्ण है। इस बात की तस्दीक इन राज्यों में राज्यपाल की नियुक्तियों के सन्दर्भ में साफ़ देखी जा सकती है यहाँ राज्यपाल या तो सेना, इंटेलिजेंस सुरक्षा जैसे विभागों के लोगों को बनाया जाता है या फिर राजदूतों के तौर पर सेवा देने वाले लोगों को नियुक्त किया जाता है ताकि यहां मुठभेड़ और चरमपंथियों से आसानी से निपटा जा सके। इससे ये बात निकल कर आती है कि दिल्ली के लिए ये भूभाग वहां की नागरिकों की तुलना में ज्यादा प्रिय है। और दिल्ली से दूर रहने की क्रीमत यहां के नागरिकों खासकर कमज़ोर मज़दूर- महिलाओं को चुकानी पड़ती है। विडंबना तो ये है कि यहां सारे आम होने वाले मानवाधिकार उल्लंघनों पर भारतीय मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग और अनुसूचित जनजाति आयोग भी कुछ संज्ञान लेता दिखाई पड़ता है या फिर कभी किसी की रिपोर्ट होती भी है तो उस पर सरकारी प्रभाव साफ़ देखा जा सकता है।

मणिपुरी जन जीवन में घटित होने वाली इन्हीं के बीच की दो घटनाओं ने सम्पूर्ण तब मणिपुर को झकझोर दिया जब 2 नवम्बर 2000 को सुरक्षा बल ने दिन दहाड़े कई मजदूरों को गोलियों से भुन दिया² और इस घटना की प्रमुख आलोचक एवं मानवाधिकार कार्यकर्ता 2004 में यांगजाम मनोरमा देवी बलात्कार/ हत्याकांड हुआ।

मनोरमा देवी का बलात्कार और फिर हत्या भारतीय लोकतंत्र के इतिहास का स्याह अध्याय है, ना

जाने कितनी गतिविधियों के द्वारा इस मामले को दबाने की कोशिश की गई। लेकिन सैकड़ों मणिपुरी महिलाओं ने विरोध स्वरूप निर्वस्त्र होकर सड़कों पर प्रतिरोध प्रदर्शन किया⁴। ये विरोध प्रदर्शन दरअसल उस पितृसत्तावादी राज्य की हुकूमत के खिलाफ था जिसे महिलाओं की निजता के अधिकार को अतिक्रमण करने में अपनी मर्दानगी का भाव दिखता है। गरिमा श्रीवास्तव अपनी क्रोएशिया प्रवास डायरी देह ही देश में मनोरमा देवी के बलात्कार और हत्या को क्रोएशिया बोस्निया⁵ की मुश्किलों, बच्चियों, जवान और वृद्ध महिलाओं के बलात्कार- हत्या जैसे जघन्य अपराध से करती हैं, लेकिन यहां एक बड़े खास किस्म का बुनियादी अन्तर ये है कि क्रोएशिया बोस्निया की महिलाओं के साथ सैनिकों द्वारा यौन उत्पीड़न युद्ध के दौरान हुए थे जहां राज्य सत्ता के अस्तित्व का संकट था मतलब राज्य का होना ना होने की अवस्था, लेकिन मनोरमा देवी के मामले में तो राज्य रूपी सरकार थी जो अपने नागरिकों के जीवन की संरक्षणकर्ता थी उसी के नुमांइदों द्वारा ऐसा होना राज्य में कैसे किसी की आशा मजबूत कर सकता है।

इससे इतर वैसे तो किसी भी व्यक्ति के जीवन में ना जाने कितनी अनन्त घटनाएँ घटित होती हैं लेकिन कभी कभी कोई एक दो घटनाएँ न केवल व्यक्ति के जीवन को बदल देती हैं बल्कि उस व्यक्तित्व से उभरे नेतृत्व में लोग अपने सुखद जीवन की उम्मीद भी रखने लग जाते हैं। यहीं से इरोम शर्मिला मणिपुरी लोगों की जनविरोध की प्रतीक बनकर उभरी, और इरोम शर्मिला लोगों में आशा नाम से प्रसिद्ध होने लगीं।

मणिपुर के इम्फाल में 2 नवंबर 2000 को हुई घटना जिसे 'मालोम हत्याकांड' के नाम से जाना जाता है के बारे में बकौल शशिधर खान, "मालोम हत्याकांड के नाम से तथाकथित आज़ाद प्रदेश मणिपुर के इतिहास में काले अध्याय के रूप में दर्ज इस घटना में सुरक्षा बलों की अंधाधुंध गोलीबारी में मारे गए 10 बेकसूरों की आह ने इरोम को विचलित कर दिया।² नवंबर 2000 को मणिपुर के लोग काली तारीख के रूप में याद करते हैं और हर साल 'शहीदी दिवस' के रूप में उस दिन पूरे प्रदेश में

मातम मनाया जाता है। उस दिन घर में खाना नहीं बनता है।"⁶

मालोम हत्याकांड में मारे गए परिवारों के सदस्यों की दुःख पीड़ा से विचलित इरोम शर्मिला ने बिना किसी राजनीतिक ताम-झाम के आफ्रस्पा कानून को बिना किसी शर्त एवं देरी के मणिपुर से हटाने के लिए आमरण अनशन शुरू कर दिया। ये अनशन आज़ाद भारत के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए होने वाले तमाम आंदोलनों से कई मायनों में अलग स्वरूप वाला है। इरोम का आमरण अनशन किसी ग़ैर वाज़िव सनक, किसी जल्दबाज़ी या अपरिपक्व समझ वाला आन्दोलन नहीं था, बल्कि ये ज़रूर है मणिपुरी लोगों के दुःख दर्द से सहमी विचलित इरोम शर्मिला ने किसी राजनीतिक लफ्फाजी करने के बजाय दिल्ली की सरकार और मणिपुरी सरकार के खिलाफ अभियान छेड़ा है। मानवीय वेदनाओं से वास्ता रखने वाला उनका आन्दोलन भले ही हिन्दी पट्टी के आंदोलनों के स्वरूप वाला नहीं है। जहाँ भारी भीड़, ग़ैर सरकारी संगठनों का समर्थन, राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित रणनीति और शहरी आम लोगों खासकर शहरी मध्यम वर्ग का ध्यान आकर्षित करने वाले ताम-झाम से बिल्कुल भिन्न है। इसके बदले ये अनशन दूसरे स्वरूप का आन्दोलन रहा है जहाँ समर्थन के नाम पर मणिपुर के 32 ग़ैर सरकारी संगठनों का समर्थन, डरी सहमी मणिपुरी जनता का समर्थन जो अक्सर संख्या बल के तौर पर सरकारों और सुरक्षा बलों के दबाव में कभी भी बिखर सकता था और कुछ स्थानीय अखबारों का समर्थन जिन्हें सुरक्षा बलों की नज़र से गुज़रना पड़ता है⁷ जिनके विरुद्ध ये आंदोलन तात्कालिक घटना के तौर खड़ा किया गया है, ये दर्शाता है कि इरोम शर्मिला का अनशन किसी लौहे के चने चबाने से भी ज़्यादा खतरनाक है।

ये बात जानने योग्य है कि इरोम का अनशन मालोम की घटना तक ही सीमित नहीं था और न ही ये सुरक्षा बलों के खिलाफ विरोध दर्ज़ करने तक सीमित था जो इस घटना में शामिल और जिम्मेदार थे। दरअसल इरोम शर्मिला का साफ़ मानना है कि नागरिक सुरक्षा और क्षेत्रीय अखण्डता की ओट में केंद्रीय सरकार जो ये कठोर कानून लागू करती है वह सैनिक सुरक्षा बलों को राज्य

द्वारा प्रायोजित हिंसा करने का लाइसेंस है जिसकी कीमत यहां के बेकसूर नागरिकों को अपनी जान खोकर या दहशत में जीकर चुकानी पड़ती है। देश की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का यहां ज़मीनी स्वरूप बिल्कुल सैनिकों के हाथ में होना ये बयां करता है कि यहां शासन और न्याय करने के लिए केवल और केवल एक ही संस्था कार्यरत है वह भी बिना किसी न्यायिक सुनवाई, जांच कमेटी और सेना के हवाले वाले का कानून के शासन के रूप में। विडंबना तो ये है कि ऐसा केंद्रीय सरकारों और राज्य सरकारों के शह पर हो रहा है। इस बात की तस्दीक समय समय पर देश के सर्वोच्च न्यायालय और अनेक न्यायिक जांच समितियों और अन्य समितियों ने भी की है जैसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश आफताब आलम और रंजना देसाई की पहल पर सेवानिवृत्त न्यायाधीश एन संतोष हेगड़े की अध्यक्षता में गठित एक सदस्य जांच आयोग। जिसमें जेम्स माइकल लिंगदोह को भी शामिल किया गया। इन आयोग समितियों की सिफारिशों में साफ़ तौर पर कहा जाता है कि इन राज्यों से इन कानूनों को हटाने की पहल सरकार को करनी चाहिए जिसके लिए अनुकूल स्थिति तैयार उसकी प्राथमिकता में शुमार हो साथ ही इन राज्यों में बढ़ती मुठभेड़ चिंता का विषय है जिसकी निष्पक्ष जांच उचित सरकारी एजेंसियों के माध्यम से होनी चाहिए।

बकौल शशिधर खान, “इसमें शक की कोई गुंजाइश ही नहीं है कि (मणिपुर में) फ़र्जी मुठभेड़ दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती। मामला सिर के ऊपर से गुजर जाने की नौबत आने तक सरकार भी आँखे मूँदे रहती है। सुरक्षा के लिए बने कानून आफ़रिफ़ा का संरक्षण सैनिकों को प्राप्त है ही। उसके बावजूद गत तीन दशकों के दौरान मणिपुर में 1528 लोगों के मारे जाने की रिपोर्ट सर्वोच्च न्यायालय में दर्ज हुई, लेकिन भारत सरकार ने इन रैयतों का खून बहाने से रोकने के उपायों की बजाय इसके लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों का पसीना सुखाने के इंतज़ाम किए। सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय की पहल पर कोई प्रतिक्रिया तक व्यक्त नहीं की।”⁸

मणिपुर खासकर चरमपंथियों द्वारा हिंसक राज्यों में आम नागरिकों की हैसियत बड़ी दयनीय है। जहां इन्हें भारत का नागरिक होने की शर्त पूरी करने के लिए भारत सरकार के सभी क्रायदे कानून का सम्मान करना पड़ता है

वहीं चरमपंथियों के आतंक तले चलने वाली समानांतर सरकारों के क्रायदे कानून मानने के लिए भी मज़बूर ही नहीं होना पड़ता, बल्कि दोनों पक्षों को कर भी भुगतान करना पड़ता है⁹ जो भारत के आम नागरिकों से सामान्यतया अधिक और पीड़ादायी होता है। कहने को तो हम लोकतांत्रिक देश हैं मगर इन नागरिकों की ज़मीनी हकीकत पर नज़र डाली जाए तो यह “सेंडविच नागरिक” से ज़्यादा कुछ नहीं हैं। अगर ये भारतीय सैन्य का साथ देते हैं तो चरमपंथियों के शिकार बनते हैं और अगर चरमपंथियों के पक्ष में खड़े होते हैं तो भारतीय सैनिकों के, और सबसे बड़ी बात निष्पक्ष ये रहने का विकल्प इन्हें कम ही मिलता है जिसका मतलब है कि इनकी नियति में केवल दो पाटों के बीच पिसना लिखा है।

देश की एकता को मजबूत बनाने के लिए जिस आफ़रिफ़ा को लागू किया गया था उसे शर्तिया तौर पर तो प्रभावित क्षेत्रों के नागरिकों के साथ संवेदनशील होना चाहिये था, उन्हें अतिरिक्त दबाव से मुक्त रहने या सहने के लिए कोई ठोस इंतज़ाम किए जाने चाहिए थे लेकिन किसी भी पल अपनी जान माल की क्षति होने का डर इनके ऊपर अलग किस्म का मनोवैज्ञानिक दबाव डालता है, मगर संवेदनशीलता तो छोड़िए ये कानून और इसके व्यवस्थापक सामान्य कानून की शर्तों को ताक पर रखते हुए देखे जा सकते हैं।

बड़ी बात ये है कि सरकार और चरमपंथियों एवं अलग अलगाववादियों के बीच के संघर्ष में सही गलत का फ़र्क़ ही ख़त्म होता जा रहा है जिसे मणिपुरी लोगों के बीच पुनः समायोजन की ज़िम्मेदारी का एहसास कराने का काम इरोम शर्मिला के आमरण अनशन और आन्दोलन ने शुरू किया है इसलिये वह बार-बार कहती हैं कि मणिपुरी लोगों की समस्या का हल इस कठोर कानून के रद्द होने में ही है।¹⁰ इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि पिछले कई दशकों से लागू इस कानून की छाव में कम से कम दो पीढ़ियों ने अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा गुज़ार दिया इस उम्मीद में कि कभी तो सामान्य जीवन चलन का हिस्सा बनेगा जिसे वे खुद किताब कहानियों के जरिये नहीं, बल्कि खुद अनुभव कर सकेंगे।

ये कितनी अजीबोगरीब बात है कि जहाँ विश्व दुनियां भर की खुशियाँ इकट्ठे करने में मशगूल है वहीं इन राज्यों के नागरिक सामान्य दिनों की आस में ही सब कुछ पाने का सपना संजोए बैठे हैं। इनका 'सेंडविच नागरिकों' वाला हाल किसी देश के दोयम दर्जे के नागरिक होने से भी गया गुजरा है। दोयम दर्जे का व्यवहार तो केवल राज्य के भीतर राज्य ही करता है अपने नागरिकों के बीच। यहाँ तो इस दोयम दर्जे के साथ-साथ समानांतर सरकार और उनकी मनमानी शर्तें इन्हें पीस रहीं हैं। एक हकीकत ये भी है कि समय समय पर सरकार और अन्य एजेंसियों ने इस कानून को धीरे धीरे हटाने की सिफारिश की है लेकिन केंद्रीय सरकार ने इसमें कभी इतनी रुचि नहीं दिखाई।

इरोम शर्मिला का संघर्ष मणिपुरी जनजातीय समाजों की उस सामाजिक भावना को बचाए रखने का संघर्ष भी है जिसे वहाँ के समाजों में 'सामाजिक साहचर्य'¹¹ के प्रतिनिधित्व और आपसी प्रतिस्पर्धा में महसूस किया जा सकता है। नवंबर 2000 की घटना कोई इरोम शर्मिला के ऊपर घटित नहीं हुई थी और न ही उसमें उनका कोई निकट का रिश्तेदार शामिल था और सबसे बड़ी बात है कि वह कोई राजनीतिक दल से भी नहीं जुड़ी हुई थीं जिसे बचाए रखने की शर्त पर ऐसा कोई विरोध-संघर्ष ज़रूरी हो जाता। इरोम तो उस समय सामान्य-सा जीवन जीने वाली 28 वर्षीय अविवाहित महिला थी जिसके पास अपने जीवन और निजत्व के लिए सुनहरे सपने हो सकते थे, लेकिन मृतकों के परिजनों की पीड़ा को अनुभव करना ही उनके और मणिपुरी समाजों में परिवर्तन लाने के लिए पहला कदम हो गया जो मानवीय चेतना और संवेदनशीलता का नायाब उदाहरण बन गया। दरअसल इरोम शर्मिला और उनके साथियों का संघर्ष अशोक वाजपेयी के इस कथन में सही चरितार्थ होता है जहां वह कहते हैं "सत्ता और व्यक्ति हमारे समय का केंद्रीय प्रश्न है। तरह-तरह की सत्ताएं, जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सत्ताएं शामिल हैं, व्यक्ति की निजता, स्वतंत्रता, गरिमा आदि में कटौती करने के लिए बहुत उत्साह से सक्रिय हैं। इस लगभग दैनिक हो गयी कटौती का सजग प्रतिरोध सुशिक्षित

नागरिकता, उसके ज्ञानसंपन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं।"¹² जो माद्दा इरोम शर्मिला ने बखूबी दिखाया है।

ये इरोम शर्मिला का सामाजिक साहचर्य के प्रति मार्मिक भाव ही तो था जो बिना किसी शर्त के मालोम काण्ड के विरुद्ध उन्होंने अकेले ही अहिंसक आमरण अनशन शुरू कर दिया। ये भी कम दिलचस्प नहीं है कि मणिपुर का नागरिक समाज जो राज्य और चरमपंथियों के बीच हिंसक घटनाओं को झेलने का आदि हो चुका था उसमें इरोम शर्मिला जैसी साधारण पृष्ठभूमि की महिला का इस कदर राज्य के विरोध में खड़ा हो जाना हमारे लोकतंत्र के सामने कई अनोखी चुनौती पेश करने वाला था मसलन इरोम शर्मिला का खाना-पानी छोड़ देना मणिपुर सरकार के लिए गले की फांस बन गया। चूँकि मणिपुर सरकार और केंद्रीय सरकार के पास न तो इसका कोई सटीक जबाब और कार्यवाही थी जिसे करके वह कोई सकारात्मक भूमिका निभा पाती और न ही इन सरकारों ने ऐसा करने में कोई रुचि दिखाई। सतही स्तर पर तो मणिपुर के तत्कालीन मुख्यमंत्री ईबाँबी सिंह ने इरोम शर्मिला की माँग और अनशन को अनशन मानने से ही इंकार कर दिया¹³ जिस पर उनकी खूब आलोचना भी हुई लेकिन ये संवाद और हलचल केवल राज्य की सीमाओं और आस पास के राज्यों तक ही सीमित रहा दिल्ली इससे पूर्णतः अछूती ही बनी रही या कहा जाए कि इसकी जानबूझकर अनदेखी करने की रणनीति अपनाई जाती रही।

लगभग डेढ़ दशक तक चले अनशन के दौरान इरोम शर्मिला ने कई उतार चढ़ाव देखे, लेकिन अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित भाव और दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर विश्व के अनोखे विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व किया। घुंघराले खुले बाल, गौरा रंग, शांत भाव वाला चेहरा, आँखों में मणिपुरी लोगों के लिए गरिमामय, सुखद सामान्य जीवन जीने के लिए सपना और सबसे महत्वपूर्ण ना खाने पीने की जिद्द जो राज्य और केन्द्र सरकार के लिए बहुत बड़ी चुनौती बन गई।

ये बात सच है भारत जैसे मुल्क में लोगों का मरना सरकारों के लिए कोई खास मायने नहीं रखता, यहाँ मरने वालों के लिए राज्य की नज़र या तो वह

आँकड़ा मात्र होता या फिर मुआवजा देने तक सीमित। लेकिन इरोम शर्मिला का अनशन न तो राज्य द्वारा उनकी मांग पर कोई सुखद प्रयास के तौर पर उजागर हो रहा था और न वह इरोम शर्मिला को उनके हाल पर छोड़ रहा था। और कहा जाए कि राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पटल पर इरोम शर्मिला का प्रतिरोध नव सामाजिक आंदोलन को अनोखी दृष्टि और परिभाषा दे रहा था जहां आंदोलन के औज़ारों के रूप में कोई भारी भरकम भीड़ नहीं थी, कोई हुजूम शोर शराबा नहीं था, कोई सरकारी मशीनरी से मध्यस्थता करने के लिए मीडिया दबाव नहीं था। अगर कुछ था तो बस इरोम शर्मिला का अकेले ही मोर्चा सम्भालने का गांधीवादी तरीका जो भारत जैसे परमाणु राष्ट्र को सोचने को मजबूर करने वाला था।

केंद्र और राज्य सरकारें अपने स्टैंड पर अड़ी रहीं और इरोम शर्मिला अपने। ये सही है कि सरकार जबरन इरोम शर्मिला को नाक में फूड पाइप लगकर उन्हें मरने नहीं दे रही थी, चूँकि मणिपुर की शांति और अशांति के बीच इरोम शर्मिला जो खड़ी थी, इरोम शर्मिला पर दबाव के तहत कई बार आत्महत्या करने के जुर्म में कार्यवाही, मुकदमे बाज़ी की गई लेकिन किन्हीं ठोस तर्क के अभाव में सरकार ये बात सिद्ध नहीं कर पाई।¹⁴ हालांकि उन्हें कई महीनों मेडिकल अरेस्ट और सामान्य बंदी भी बनाया गया लेकिन इरोम शर्मिला लगातार डेढ़ दशक से ऊपर चले अनशन के दौरान नाक में फूड पाइप लगाए ही रहती थीं।

21वीं शताब्दी में कौन ऐसा शख्स होगा जिसने इरोम शर्मिला के अलावा ऐसा अनशन देखा हो। ये कितना अज़ीब संजोग है कि हमारे देश में दरिद्र नारायण, समाज के हाशिये पर पड़े व्यक्ति, समाज के आखिरी पंक्ति के व्यक्ति, सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय जैसी युक्तिसंगत बातें की जाती हैं, लेकिन उस धड़े से उठती आवाज को गंभीरता से सुना नहीं जाता। गाँधी-बुद्ध-जैन-अशोक के इस देश में राज्य अपने ही नागरिकों के प्रति करुणा दिखाने में अक्सर परहेज़ करता है। इरोम शर्मिला के सवाल गम्भीर प्रवृत्ति के हैं जो मणिपुर और अन्य ऐसे राज्यों की मनोदशा बताते हैं और राज्य से शांति पूर्ण आग्रह करते हैं कि राज्य के ये कठोर कानून खत्म किए

जाएं। क्योंकि ज़मीनी हकीकत में नागरिक ही इन कठोर कानूनों के शिकार होते हैं और बदले में सरकारें नैतिक क्षतिपूर्ति की बुनियादी रस्में भी अदा नहीं करतीं यही इरोम शर्मिला की चिंता थी जिसके लिए वह संघर्षरत थीं और मणिपुरी जनता की स्थानीय अस्मिता की रक्षा और उसके सम्मान के लिए वह राज्य से आग्रह कर रही थीं।

ये विडंबना ही है कि भारत की तमाम सरकारों ने इरोम शर्मिला के आमरण अनशन को सुखद परिणाम पर पहुंचने के लिए कोई खास ऊर्जा खर्च नहीं की, जबकि ईरानी मानवाधिकार वकील नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित (2003) शीरोन ईबादी और संयुक्त राष्ट्र की ओर से 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा' पर नज़र रखने के लिए तैनात रिपोर्टर राशिदा मंजू ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तरजीह दिलाने के दबाव बनाया। ईबादी ने तो इरोम शर्मिला के अनशन को इतने महत्व का माना कि उन्होंने तो नॉर्वे की नोबेल शांति पुरस्कार समिति को इरोम शर्मिला का नाम भी सूझा दिया।¹⁵

निष्कर्ष

ये आज की हकीकत है इरोम शर्मिला ने 16 वर्षों के बाद अपने आमरण अनशन को वापिस ले लिया है, इस दौरान दिल्ली की सरकार कई बार बदली लेकिन मणिपुर और इस जैसे राज्यों के नागरिकों की हालात कमोवेश वैसे ही रही। आज भी ये मुद्दा हल होना बाकी है। बावजूद इसके इरोम शर्मिला का संघर्ष कई सवाल पीछे छोड़ गया है मसलन आफ़रूपा जैसे कानून का भारतीय लोकतंत्र में भविष्य क्या है? ये कानून कब स्थायी व्यवस्था बना रहेगा, कितनी पीढ़ियां इस दंश को और झेलेंगी?

एक सवाल और है जिसका जबाब सरकार से ज़्यादा मणिपुर के लोगों को देना है वह यह कि मुख्यमंत्री ईबाबी सिंह के खिलाफ़ इम्फाल से इरोम शर्मिला का चुनाव लड़ना भले ही इनके राजनीतिक कलेवर के अनुकूल न हो लेकिन चुनाव में उन्हें एक सो मतों से भी कम मिलना जबकि इससे ज़्यादा तो मत नोटा (NOTA) पर पड़े। ये क्या दर्शाता है।¹⁶ इरोम शर्मिला का अनशन किसी ग़ैर वाज़िब माँग पर होना, या इरोम शर्मिला का संघर्ष

और राजनीति दोनों अलग विषय हैं इससे भी एक पूरक प्रश्न सामने आता है क्या बिना राजनीतिक हस्तक्षेप के ये कानून रद्द हो जाएगा? ना जाने ऐसे कितने सवाल हैं जिनका जबाब आने वाली पीढ़ियों और भविष्य की सरकारों को देना है। बावजूद सबके इरोम शर्मिला का संघर्ष आदर्श जीवन, नागरिक समाजों में नागरिक अधिकारों की लड़ाई के इतिहास में एक अध्याय बन गया है।

संदर्भ एवं टिप्पणी

¹ 1958 में भारत के उन डिस्टर्ब एरिया में नागरिक सुरक्षा के नाम जिस AFSPA कानून को लागू किया गया उससे कई शंकाओं का उपजना लाज़मी था। जहां एक तरफ नागरिकों और सैन्य बलों की सुरक्षा का सवाल था वहीं नागरिक अधिकारों का मसला भी था। जो इस कानून के साथ राज्य, सुरक्षा एजेंसियों से सहिष्णु और संवेदनशील होने की माँग करता था। ये बात जगजाहिर और सर्वस्वीकृत है कि इन कानूनों को केवल थोड़े समय खासकर आपातकाल जैसी स्थिति में ही लागू रहना चाहिए था और सरकार एवं सुरक्षा एजेंसियों को सामान्य स्थित लाने के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रयास करने चाहिए थे लेकिन अर्द्ध शताब्दी वर्ष से भी ज़्यादा इसका बना रहना सरकार की मंशा के ऊपर सवालिया निशान ज़रूर लगाता है। इरोम शर्मिला का अनशन इसी सवाल के इर्दगिर्द घूमता है। और - खान शशिधर - विस्तार के लिए देखें, इरोम शर्मिला और आमरण अनशन, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, सन 2018, पृष्ठ-26

² खान शशिधर, इरोम शर्मिला और आमरण अनशन, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, सन 2018, पृष्ठ -170, 174 और 172

³ वही, पृष्ठ-19

⁴ श्रीवास्तव गरिमा, देह ही देश क्रोएशिया प्रवास डायरी, दूसरा संस्करण, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, सन 2019, पृष्ठ -157 और देखें, खान शशिधर, इरोम शर्मिला और आमरण अनशन, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, सन 2018, पृष्ठ-16

⁵ वही, पृष्ठ 154 - 162

⁶ खान शशिधर, इरोम शर्मिला और आमरण अनशन, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, सन 2018, पृष्ठ -19

⁷ वही, पृष्ठ -25 और देखें 150-151

⁸ वही, पृष्ठ -66-67

⁹ वही, पृष्ठ-155

¹⁰ वही, पृष्ठ -25

¹¹ बरट्रेड रसेल राज्य की सत्ता के अधीन सामाजिक साहचर्य के प्रश्न उठाते हैं जो मानवीय सभ्यता के विकासक्रम में उसकी स्वायत्तता और अस्मिता को चिह्नित करता है, बुद्ध इसी सामाजिक साहचर्य को भ्रातृत्ववाद को रूप में देखते थे जो समाज को एकीकृत करने का काम करती है उसमें अपनत्व, सहजता और अस्मिता उसे ऐसा होने वाली शक्ति प्रदान करते हैं। इरोम शर्मिला का मालोम हत्याकांड और मनोरमा देवी बलात्कार और हत्याकांड के विरोध में इसी सामाजिक साहचर्य की भावना प्रेरित किया। और जानकारी के लिए देखें - रसेल, बरट्रेड, सत्ता और समाज, अनूदित आचार्य नंद किशोर, सेतु प्रकाशन रज़ा फाउंडेशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -22 - 36

¹² रसेल, बरट्रेड, सत्ता और समाज, अनूदित आचार्य नंद किशोर, सेतु प्रकाशन रज़ा फाउंडेशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ -6

¹³ वही, पृष्ठ -61-62

¹⁴ वही, पृष्ठ -28

¹⁵ वही, पृष्ठ -42-43

¹⁶ AFSPA पर केंद्र सरकार ने भी सुखद पहल की है और मणिपुर में इम्फाल को छोड़ कर सभी क्षेत्रों में ढील बरती है। इसके लिए देखें - गवर्नमेंट ऑफ मणिपुर, होम डिपार्टमेंट, नोटिफिकेशन, इम्फाल 17, December 2020, www.indiacode.nic.in